पूनम झा'प्रथमा'

आत्मीय सुख

'कहाँ से शुरू और कहाँ पहुँचा हूँ ? वो कचड़ा बीनना, कूड़े से उठाकर रोटी खाना, सड़क के किनारे ही सो जाना...' आप बीती तैर रहा था किशुन की आँखों में। ' वो छोटे-छोटे हाथों से होटल में प्लेट धोना, गाड़ियां साफ करना...। एक एक पाई जोड़कर ये रिक्शा खरीदना । आज यही रिक्शा ने मुझे और बीबी, बच्चों को पाला है। मैंने तो अपने माता पिता को देखा भी नहीं है। मुझे तो ये धरती और आसमान ने पाला है।' विचारों की गठरी खुलती ही जा रही थी किशुन की। 'इसी रिक्शा के बदौलत बच्चों को पढा-लिखाकर इस लायक बना सका हूँ कि दोनों बच्चे अपने पैरों पर खड़े हैं। माना कि बच्चों ने सब सुख-सुविधा हमें दे रखा है, अब इस रिक्शा को खींचने की मुझे जरूरत नहीं है। लेकिन मुझे तो आज भी इसी पर लेटने से सूकून महसूस होता है, साथ में आसमान को देखना और तारों से बातें करना आत्मीय सुख देता है।' आकाश को निहारते हुए बुदबुदाया "सुन मेरा प्यारा रिक्शा! तुम्हारी तरह मैं भी अब बेकार हो गया हूँ, मुझे भले ये लोग घर से बाहर कर दें। लेकिन लोग चाहे मुझे कुछ भी कहे मैं तुम्हें नहीं अपने से दूर करुंगा।"

आलोचक का दर्द

-- "महफिल की जान कहाने वाले दिखाई नहीं दे रहे हैं ?"

"हाँ सुना है उनके सिर में दर्द है।"

"ओह! बहुत हँसाते हैं। बहुत अच्छे आलोचक हैं।"

"हाँ ये तो है। लेकिन पिछले सम्मेलन में उनकी आलोचना हो रही थी।"

"आलोचक की आलोचना ?" अंदर से आवाज आई 'तभी तो ...'